प्रवचन-९२, श्लोक-१२१, गाथा-९०, शुक्रवार, मागशर शुक्ल १२, दिनांक ३०-११-१९७९

नियमसार ९० गाथा। तीसरा पैराग्राफ है।

**निरंजन निज परमात्मतत्त्व...** यहाँ है न? पहले आ गया है। मिथ्यात्व की पहली बात आ गयी है। अब यहाँ तो **निरंजन निज परमात्मतत्त्व...** यह परमात्मतत्त्व निज-अपना। उसके **श्रद्धानरहित अनासन्नभव्य जीव ने...** चारित्र प्राप्त **सामान्य प्रत्ययों को पहले सुचिर काल भाया है;... श्रद्धान रहित अनासन्नभव्य जीव ने वास्तव में सामान्य प्रत्ययों...** अर्थात् मिथ्यात्व आदि को सुनिश्चितरूप से पूर्व में भाया है। क्या कहा, समझ में आया? अनासन्न भव्य जीव। जिसे संसार निकट नहीं है, संसार दूर है ऐसे अनासन्न जीव। है न अनासन्न भव्य जीव? उसने मिथ्यात्व आदि भाव वास्तव में **परमात्मतत्त्व के श्रद्धानरहित... सामान्य प्रत्ययों...** अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान बिना मिथ्यात्व आदि **पहले सुचिर...** अनन्त काल। सुचिर काल। **भाया है;...** आहाहा! उसने मिथ्यात्व और अज्ञान और राग-द्वेष तो अनादि काल से भाया है।

**जिसने परम नैष्कर्म्यरूप चारित्र प्राप्त नहीं किया है...** स्वरूप की रमणता, स्वरूप का अनुभव होकर, स्वरूप की रमणता जिसने प्राप्त नहीं की। **ऐसे उस स्वरूपशून्य बहिरात्म-जीव ने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को नहीं भाया है।** आहाहा! अनन्त-अनन्त काल से, अनादि काल से उसने इन सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की भावना नहीं भायी है।

**मिथ्यादृष्टि जीव से विपरीत...** मिथ्यादृष्टि जीव से विपरीत। **गुणसमुदायवाला...** गुण का पिण्डवाला प्रभु भगवान **अति-आसन्नभव्य जीव...** निकट में जिसकी मुक्ति है, अल्प काल में जिसकी मुक्ति है, ऐसे **अति-आसन्नभव्य जीव होता है।** दो प्रकार कहे। अनादि अति आसन्न भव्य से रहित, उसने मिथ्यात्व आदि भाव अनन्त बार किये हैं और आसन्न भव्य, निकट भव्य है, (जिसने) सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित चारित्र को सेवन किया है। आहाहा!

अब **इस (अतिनिकटभव्य) जीव को...** अति निकट भव्य-अल्प काल में जिसका संसार का परिभ्रमण का अन्त आनेवाला है। अल्प काल में जिसके संसार का

अन्त आनेवाला है, ऐसे जीवों को **सम्यग्ज्ञान की भावना किस प्रकार से होती है...** कहते हैं कि वे जीव सम्यग्ज्ञान की भावना... राग की, दया, दान की या व्रत की यह नहीं। दया, दान, व्रत, भक्ति आदि, यह व्यवहार में जाता है। यह कहेंगे। वह तो कथनमात्र है, वस्तु कोई नहीं। दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, वह तो कथनमात्र व्यवहार है, वस्तु नहीं। आहाहा!

उस **जीव को सम्यग्ज्ञान की भावना किस प्रकार से होती है, ऐसा प्रश्न किया जाये तो ( आचार्यवर ) श्री गुणभद्रस्वामी ने ( आत्मानुशासन में २३८ वें श्लोक द्वारा ) कहा है कि:—**

**भावयामि भवावर्ते भावना: प्रागभाविता: ।**
**भावये भाविता नेति भवाभावाय भावना: ।।**

सब 'भ' आते हैं। आहाहा!

**[ श्लोकार्थ : ] भवावर्त में पहले...** जीव के परिभ्रमण में अनन्त-अनन्त भव किये हैं। नरक के, तिर्यंच के, मनुष्य के, सेठ के, राजा के, देव के, नौवें ग्रैवेयक रूप के देव के और अरबोंपतिरूप से... सेठ - ऐसे भव के आवर्तन—भटकने के भव में। **पहले न भायी हुई भावनाएँ ( अब ) मैं भाता हूँ।** अब उस भवावर्त को छोड़कर **पहले न भायी हुई भावनाएँ ( अब ) मैं भाता हूँ।** आहाहा! देखो! पंचम काल के सन्त मुनि ऐसा कहते हैं कि हम शुभभाव में हैं, ऐसा नहीं। आहाहा! हम तो **भवावर्त में पहले न भायी हुई भावनाएँ ( अब ) मैं ( स्वयं ) भाता हूँ।** आहाहा!

**वे भावनाएँ ( पहले ) न भायी होने से...** ऐसी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की भावना नहीं भायी होने से, **मैं भव के अभाव के लिए...** भव के अभाव के लिए। आहाहा! भव ही नहीं चाहिए। स्वर्ग का भव भी नहीं, सर्वार्थसिद्धि का भव भी नहीं। **भव के अभाव के लिये उन्हें भाता हूँ ( कारण कि भव का अभाव तो भवभ्रमण के कारणभूत भावनाओं से विरुद्ध प्रकार की पहले न भायी हुई ऐसी अपूर्व भावनाओं से ही होता है )।** आहाहा! भव का अभाव, पूर्व में नहीं भायी हुई भावना से—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की भावना से ही होता है। कोई इस प्रकार की क्रिया—व्रत, तप और भक्ति से नहीं होता ऐसा तो अनन्त बार किया है। परन्तु अभी तो यह सब मनाया है। हो-हा.. हो-हा। अब वापस इससे विरुद्ध।

## श्लोक-१२१

और ( इस ९०वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं ):—

( मालिनी )

अथ भवजलराशौ मग्न-जीवेन पूर्वं,
किमपि वचनमात्रं निर्वृतेः कारणं यत्।
तदपि भव-भवेषु श्रूयते बाह्यते वा,
न च न च बत कष्टं सर्वदा ज्ञानमेकम्।।१२१।।

(हरिगीतिका)

मोक्ष का जो कथनमात्र उपाय है व्यवहार से।
भव-सिन्धु डूबे जीव ने भव-भव सुना है आचरा॥
पर अरे रे! खेद है जो सर्वदा इक ज्ञानमय।
उसको सुना है ही नहीं, अरु आचरा नहीं इस जीव ने॥१२१॥

[ श्लोकार्थ : ] जो मोक्ष का कुछ कथनमात्र ( -कहनेमात्र ) कारण है, उसे भी ( अर्थात् व्यवहाररत्नत्रय को भी ) भवसागर में डूबे हुए जीव ने पहले भवभव में ( -अनेक भवों में ) सुना है और आचरा ( -आचरण में लिया ) है; परन्तु अरे रे! खेद है कि जो सर्वदा एक ज्ञान है, उसे ( अर्थात् जो सदा एक ज्ञानस्वरूप ही है, ऐसे परमात्मतत्त्व को ) जीव ने सुना-आचरा नहीं है, नहीं है॥१२१॥

### श्लोक-१२१ पर प्रवचन

और ( इस ९०वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं ):—

अथ भवजलराशौ मग्न-जीवेन पूर्वं,
किमपि वचनमात्रं निर्वृतेः कारणं यत्।

**तदपि भव-भवेषु श्रूयते बाह्यते वा,**
**न च न च बत कष्टं सर्वदा ज्ञानमेकम्।।१२१।।**

आहाहा! आचार्य स्पष्टीकरण करते हैं।

**[ श्लोकार्थ : ] जो मोक्ष का कुछ कथनमात्र...** है। व्यवहार समकित, व्यवहार ज्ञान, व्यवहार चारित्र, वह तो कथनमात्र है। कोई वस्तु नहीं। आहाहा! अभी यह हो पड़ा है। व्यवहार करो... व्यवहार करो... व्यवहार करो, व्यवहार साधन। यहाँ कहते हैं ऐसा व्यवहार अनन्त बार किया है, तथापि उसमें कुछ हाथ नहीं आया। राग और जहर की क्रिया में, अराग को अमृत प्रभु कहाँ से हाथ आवे? आहाहा! अब इसे साधन मानकर इससे निश्चय साध्य होगा, ऐसी अभी बड़ी चर्चा बाहर चली है। पहले तो यह करना पड़े न? यह करे तो होवे न? यह करे तो होवे न? शास्त्र में भी ऐसे लेख आते हैं। जयसेनाचार्य की टीका में व्यवहार साधन, निश्चय साध्य, (ऐसा आता है)।

.... राग से प्रज्ञा भिन्न करके जिसने आत्म-अनुभव किया है, अन्दर आनन्द के वेदन में आया है, उसे अन्तर का साधन प्रगट हुआ है, उसे व्यवहार जो राग है, उसे व्यवहार से साधन कहने में आता है परन्तु व्यवहार करने से साध्य होगा, ऐसा कहने का आशय नहीं है। वहाँ... है न? पण्डित जयचन्दजी, यद्यपि ज्ञानसागर (ने) पण्डित जयचन्दजी में से टीका की है। अमृतचन्द्राचार्य की नहीं की। आचार्य भी दूसरे हैं, वह ज्ञानसागर की टीका, पहली जयचन्द्र... परम्परा ... था। अमृतचन्द्राचार्य परम्परा... नहीं थे। उन्होंने परम्परा तोड़ डाली। व्यवहार से साधन .... बात उन्होंने तोड़ डाली, ऐसा चला है। यहाँ तो यह पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं। यह अमृतचन्द्राचार्य नहीं, ये पद्मप्रभमलधारिदेव, वे कहते हैं।

**मुमुक्षु :** सभी ज्ञानियों का एक ही मत है।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** एक ही मत है परन्तु अभी पूरा बदल गया है। आहाहा! अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं, वह यहाँ रखा है।

**जो मोक्ष का कुछ कथनमात्र...** कुछ कथनमात्र **( -कहनेमात्र )...** व्यवहाररत्नत्रय मोक्ष का कारण, वह कहनेमात्र है, कथनमात्र है। वस्तु का स्वरूप नहीं है। बन्ध का कारण है, उसे कहनेमात्र कथन में (कहने में आया है)। आहाहा! व्रत करना, तप करना, भक्ति

करना, पूजा करना, मन्दिर बनाना, दया, दान करके एक-दूसरे के सम्प में रहना, संघ में एकता करना तो संघ टूटे नहीं। संघ एक हो, इसलिए उसमें से एकत्वबुद्धि हो। उसमें से एकत्व से साधकपना प्रगटे - ऐसी प्ररूपणा अभी चलती है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि सिद्धान्त में जितना व्यवहार कहा है, बारह अंग में जितना व्यवहार का कथन है, वह तो मोक्ष का कथनमात्र **कुछ कथन...** कुछ कथन (मात्र है)। आहाहा! अर्थात् निमित्त है, उतना कथन करनेमात्र बात की है। आहाहा! महीने-महीने के अपवास करे, वर्षी तप करे, रूखा आहार करे, एक ग्रास खाकर दूसरा छोड़ दे, ऊनोदरी करे, प्रायश्चित्त ले, अनशन, ऊनोदर, वृत्तिपरिसंख्यान, रसत्याग... एक रस (के अतिरिक्त) दूसरे रस चलें नहीं, ऐसा अनन्त बार किया है। आहाहा! यह सब व्यवहार कथनमात्र है। वस्तु में कुछ माल नहीं है। आहाहा! यह तो नियमसार है। समयसार में अमृतचन्द्राचार्य ने कहा है, वह ये कहते हैं। ये कहते हैं, वह अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं और अनन्त आचार्य ऐसा ही कहते हैं। आहाहा!

व्यवहारमोक्षमार्ग, ऐसा कहने में जो आया है, वह कथनमात्र है। **कुछ कथन...** कुछ कथन अर्थात् एक निमित्त है, ऐसा कथनमात्र है। निमित्त है। कुछ कथन अर्थात् है, ऐसी कथनमात्र बात है। आहाहा! व्यवहार **कुछ कथनमात्र ( -कहनेमात्र ) कारण है, उसे भी ( अर्थात् व्यवहाररत्नत्रय को भी )...** देव-गुरु की श्रद्धा, शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत, शास्त्र का नवपूर्व का ज्ञान, वह सब व्यवहार अनन्त बार किया है। आहाहा! कठिन काम है। दो घड़ी की निवृत्ति मिलती नहीं, उसे कहना, विकल्प से रहित ही तू तत्त्व है। आहाहा! स्वरूप तत्त्व में विकल्प ही नहीं। आहाहा! बहुत हटकर आगे बाहर से बढ़े तो विकल्प में आवे, वहाँ से हटकर आवे तो पर्याय पर दृष्टि रहे परन्तु यह वह का वह है। पर्याय में से हटकर द्रव्य पर आना चाहिए। आहाहा! द्रव्य तो कभी देखा नहीं। पर्याय का अनादि अभ्यास और पर्याय के अभ्यास में तो पर के ऊपर लक्ष्य जाता है, राग के ऊपर, पुण्य के ऊपर, दया, दान के ऊपर जाता है। उसमें स्वयं मानता है कि मैं कुछ धर्म करता हूँ। ऐसा व्यवहार कथनमात्र **भवसागर में डूबे हुए जीव ने...** आहाहा! **भवसागर में डूबे हुए जीव ने...** यह व्यवहाररत्नत्रय अनन्त बार किया।

**मुमुक्षु :** उसे तो भवसागर में डूबा हुआ कहा।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** डूबा हुआ कहा। आहाहा! क्योंकि यह व्यवहार है, वह स्वयं भव है। भगवान, भव के स्वभावरहित है और यह पुण्य के परिणाम, वे भव हैं, संसार है। संसार है। नियमसार में विकल्प को घोर संसार कहा है। विकल्प घोर संसार है। आहाहा! उसे पूर्व में अनन्त बार **भवसागर में डूबे हुए जीव ने पहले भवभव में...** आहाहा! भवभव में अर्थात्? लगातार कहीं अनन्त मनुष्यभव नहीं मिलते और लगातार अनन्त सुनते नहीं, तथापि भवसागरवाला है। छोटाभाई! भवभव में है। परन्तु इसका अर्थ कि जो मनुष्य के भव मिले, उसमें यह सब सुनकर उसमें रहा, बस।

**भवभव में ( -अनेक भवों में )...** इसका अर्थ यह है। इसका अर्थ ऐसा निकालते हैं कि भवभव में अर्थात् प्रत्येक भव में—तिर्यंच के, मनुष्य के, निगोद के, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? तिर्यंच के, मनुष्य के भव, नारकी का भव होवे तो सुने। कुछ सब भव में सुनने का नहीं मिला, तथापि इसका अर्थ इन बहुत भवों में। मनुष्य के बहुत भवों में, तिर्यंच के भी बहुत भवों में, नारकी के भी बहुत भवों में, देवों के भी बहुत भवों में। व्यवहाररत्नत्रय की बात तो भवभव में सुनी है। आहाहा! इसे मीठी भी लगी है। यह व्रत करो, तप करो, रस छोड़ो... आहाहा! समकित बिना आत्मा का ध्यान करो। बारह तप में आता है न? विकल्प शुभ-शुभ। शुभविकल्प का ध्यान (करे) और शान्ति दिखायी दे, ऐसा अनन्त बार किया है। आहाहा!

**भवभव में ( -अनेक भवों में ) सुना है और आचरा ( -आचरण में लिया ) है;...** वापिस सुनकर अमल में लाया है। व्यवहाररत्नत्रय से धर्म होगा, ऐसा अनन्त बार सुना और अनन्त बार अमल में लाया, अनन्त बार आचरण किया है। आहाहा! भव-भव में आचरण किया है अर्थात् बहुत भव में। आहाहा! एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीइन्द्रिय, चौइन्द्रिय इन भव में तो सुनने को भी मिले, ऐसा नहीं है। इसीलिए जिस भव में सुनने को मिले, वे भव लेना। उन भवभव में। आहाहा!

**डूबे हुए जीव ने...** आहाहा! राग की एकता में डूब गया है। चैतन्यरत्न, निर्मलानन्द की सत्ता को एक समय की राग की सत्ता और पर्याय की सत्ता में गँवा बैठा है। वह डूबे हुए जीव ने ऐसा किया। उसने आचरण किया है। सुना है इतने से नहीं। आचरण भी व्यवहाररत्नत्रय में जुड़ गया है। व्यवहार आचरण किया है, पंच महाव्रत अनन्त बार पालन

किये हैं। शास्त्रज्ञान ग्यारह अंग अनन्त बार किये हैं। आहाहा! देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा अनन्त बार की है। आहाहा! ऐसी बात यह पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं।

आचरण में-अमल में लाया है। ऐसा सुना। व्यवहार, दया, दान, देव, गुरु, शास्त्र की भक्ति, देव-गुरु-शास्त्र का बहुमान, विनय, प्रतिष्ठा, मन्दिर बनाना, रथयात्रा निकालना, गजरथ करना, ऐसा अनन्त बार अमल में लाया है। सुनकर अनन्त बार ऐसा किया है। लाखों-करोड़ों रुपये गजरथ में खर्च किये हैं। भव में डूबे हुए ने ऐसा सब अनन्त बार किया है। आहाहा! कठिन काम लगता है। भव तो उड़ाता है, ऐसा कहते हैं। भव को उड़ाता नहीं। भव है, उसमें तू भटकता है, ऐसा कहते हैं। भव है, उसमें तू भटकता हुआ डूबा हुआ है। आहाहा! संसाररूपी भव, भवसागर। आहाहा! कहीं भव का अन्त नहीं। ऐसे अनन्त भवसागर में डूब गया है, भाई! आहा! ऐसे डूबे हुए ने सुना और आचरण किया है, ऐसा कहते हैं।

**भवसागर में डूबे हुए...** आहाहा! है न? **भवसागर में डूबे हुए जीव ने पहले भवभव में (-अनेक भवों में) सुना है और आचरा (-आचरण में लिया) है;...** आहाहा! **परंतु अरेरे!** मुनिराज, **खेद है कि...** (खेद करते हैं) राग है न? **अरेरे!** आहाहा! 'न च न च बत कपटं' **खेद है कि जो सर्वदा एक ज्ञान है,...** भगवान तो एक ज्ञानस्वरूप है। उसमें राग भी नहीं, दया भी नहीं, व्रत भी नहीं। भगवान की भक्ति आत्मा में नहीं। वह एक ज्ञानस्वरूप है। है? **एक ज्ञान है,...** सर्वदा एक ज्ञान है। त्रिकाली ज्ञायक एकरूप है। वह ज्ञायक कभी राग में नहीं आया। आहाहा!

(समयसार की) ६वीं गाथा में कहा है न? कि ज्ञायकभाव, शुभाशुभभावरूप नहीं हुआ। (यदि) होवे तो जड़ हो जाए। आहाहा! क्योंकि ज्ञानस्वरूप चैतन्यप्रकाश का पुंज, चैतन्यप्रकाश का पूर, नूर, अकेला चैतन्य तेज का सागर, पुण्य और पाप के भाव अचेतन जड़—ज्ञान के अंश से खाली... ऐसा चैतन्यस्वभाव वह ज्ञान के अंश के खालीरूप कैसे हो? आहाहा! ज्ञायक तो ज्ञायक ही रहा है। त्रिकाल निरावरण... त्रिकाल निरावरण... आहाहा! सकल अखण्ड एकरूप, एकरूप ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... चैतन्यप्रकाश... चैतन्यप्रकाश... चैतन्यप्रकाश... चैतन्यप्रकाश... अनादि अनन्त सर्वदा। आहाहा। इस चैतन्यप्रकाश में विकल्प है, वह तो अन्धकार है, वह तो है नहीं परन्तु इसके प्रकाश में अल्पता भी नहीं। आहाहा!

यहाँ जरा अनुकूलता पाँच-पच्चीस लाख मिले, वहाँ प्रसन्न-प्रसन्न हो जाता है। आहाहा! अच्छा जरी का कपड़ा, सोने के गहने लटकावे इस मुर्दे-मुर्दे के ऊपर। मेरी शोभा, शोभा अधिक लगे। उसे ऐसा कहते हैं, प्रभु! तू सर्वदा चैतन्य, चैतन्य के प्रकाश का पूर है न! पूर है न। तुझमें पुण्य-पाप के अन्धकार का तो त्रिकाल अभाव है। पुण्य-पाप में तेरा अभाव है और चैतन्यप्रकाश की सत्ता-अस्तित्व जो प्रकाश का नूर जो चैतन्य, उसमें पुण्य-पाप के विकल्प का तो अभाव है। एक समय की उसकी पर्याय का अभाव है तो विकल्प तो अन्धकार है। पर्याय तो प्रकाश है। चैतन्य त्रिकाली प्रकाश पिण्ड है। उसकी एक समय की पर्याय है, वह प्रकाश है। एक समय का प्रकाश भी जहाँ पिण्ड नहीं, वहाँ पुण्य-पाप तो अन्धकार है, अंधेरा है। वह उसमें कहाँ से आया? आहाहा! अलौकिक बात है, बापू! आहाहा! साधारण लोगों को तो विवाद होता है। ये व्यवहार उड़ाते हैं... ये व्यवहार उड़ाते हैं। परन्तु यह क्या कहते हैं? कौन कहते हैं? सिद्धान्त कहता है? कौन कहता है? भाई! तुझे खबर नहीं।

आठ वर्ष की बालिका भी जहाँ चैतन्य के प्रकाश त्रिकाली के ऊपर नजर पड़ने पर जिसकी नजर राग पर तो रहे नहीं, परन्तु पर्याय पर रहे नहीं। आहाहा! ऐसा चैतन्यपुंज आनन्द का गंज, चैतन्य शक्ति का संग्रहालय, सुख का सागर; उसमें अपूर्णता नहीं तो अन्धकार तो कहाँ से होगा। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, वह अन्धकार है। अन्धकार से प्रकाश होगा? कहाँ से होगा? ऐसा कठिन काम है। वस्तु है न, प्रभु! भगवानरूप से बुलाया है। आचार्य ने भगवानरूप से बुलाया है। भगवान! तू पूर्णस्वरूप है न! अनन्त गुण से पूर्ण स्वरूप है। अनन्त गुण कभी अपूर्ण और विपरीत तो है ही नहीं। आहाहा!

ऐसे स्वरूप को, **खेद है कि जो सर्वदा एक ज्ञान है,...** 'एक ज्ञान है' भाषा ऐसी है न? **सर्वदा...** और **एक...** (इन) दो शब्दों पर जोर है। तीनों काल एक है। एक मिटकर दो हुआ नहीं। आहाहा! द्रव्य मिटकर पर्याय नहीं हुई। सर्वदा एक है। आहाहा! क्यों नजर में न पड़े? क्यों न ज्ञात हो? क्यों न ज्ञात हो, वह जाननेवाला कौन है? उसे कभी देखा? देखने की ओर ध्यान किया? नहीं ज्ञात होता—ऐसा जाना, नहीं ज्ञात होता—ऐसा जाना, यह किसने (जाना)? मैं ज्ञात नहीं होता। यह कहता है कि मैं ज्ञात होता हूँ, दूसरा ज्ञात नहीं होता। आहाहा! ऐसी बात है। व्यवहार भवसागर में डूबे हुए, भवभव में सुना और आचरण किया।

**सर्वदा एक ज्ञान है,...** एक ज्ञान है। उसमें पाँच भेद नहीं। मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय, वह पर्याय है। **एक ज्ञान है,...** एक ज्ञान है। सर्वदा तीनों काल, वह एकरूप है। कभी उसमें अपूर्णता तो नहीं है। विकार की तो बात ही क्या करना? आहाहा! ऐसा **सर्वदा एक ज्ञान है, उसे ( अर्थात् जो सदा एक ज्ञानस्वरूप ही है, ऐसे परमात्मतत्त्व को )...** ऐसे परमात्मतत्त्व को, ऐसे परमस्वरूप तत्त्व को, ऐसे परमस्वभावभाव को, ऐसे परमस्वभावभाव को इसने कभी देखा नहीं। आहाहा! कभी इसने सुना नहीं, ऐसा कहते हैं। नौवें ग्रैवेयक गया, ग्यारह अंग पढ़ा, सुना नहीं? सुना उसे कहते हैं (कि) सुनकर अन्दर में उतरे तो सुना कहते हैं। आहाहा! ऐसा मार्ग है। यह तो पूरे दिन एक तो धन्धे के कारण निवृत्त नहीं; उसमें से वापस धर्म के नाम से प्रवृत्ति के कारण निवृत्त नहीं। धमाल! इसका ऐसा करना... इसका ऐसा करना... इसका ऐसा करना। आहाहा!

जो सर्वदा एक ज्ञानरूप है। उसे इसने सुना नहीं **आचरा नहीं है,...** फिर एक शब्द नीचे डाला '**न च न च बत**' कलश में ऐसे शब्द दो बार रखे हैं। नहीं सुना, नहीं आचरण किया। सुना नहीं, आचरण नहीं किया। आहाहा! दिगम्बर साधु होकर नववें ग्रैवेयक गया, हजारों रानियाँ छोड़कर, पाँच इन्द्रियों का दमन करके, परन्तु यह चैतन्य एकरूप ज्ञायक है-तत्त्व है, अस्ति है, सत्ता है, एकरूप है, स्वभावस्वरूप है, भाववान है, उसे तूने कभी सुना नहीं। आहाहा! सुना नहीं अर्थात् आचरण नहीं किया। 'नहीं' दो शब्द आये न? सुना नहीं, आचरण नहीं किया। सुना नहीं, नहीं। **आचरा नहीं है, नहीं है।** आहाहा! ऐसी बात है।

अब यह श्लोक पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि का है। स्वयं टीका करने से पहले कहते हैं कि यह टीका कुछ मैं करता हूँ, ऐसा नहीं है। इसकी टीका तो चली ही आती है। गणधरों से चली आती है। मैं तो कर्ता कौन? आहाहा! आधार दिया है। यह बात सब गणधरों से चली आती है। पहले आता है न? आहाहा! मैंने कही है, ऐसा नहीं। ये भाव, टीका के ये भाव गणधरों से चले आये हैं। मेरे मन अभी रहा है कि इसकी टीका हो - ऐसा विकल्प रहा करता है, इसलिए होती है। आहाहा! अब इसमें व्यवहार से निश्चय हो, यह बात कहाँ रहती है? यशपालजी! व्यवहार करते-करते निश्चय होगा नहीं? तो यह व्यवहार सब झूठा? व्यवहार भगवान ने कहा है या नहीं? भगवान ने कहा है परन्तु भगवान ने उसका फल संसार कहा है। व्यवहार कहा है, परन्तु उसका फल संसार कहा है। अस्ति है न?

व्यवहार भी अस्ति है परन्तु उसका फल संसार है। आहाहा! अब इसे फुर्सत नहीं होती, निवृत्ति नहीं मिलती। आहाहा!

वस्तुस्वरूप पूर्णानन्द एकरूप चीज़ है। समस्त आत्माएँ ऐसे हैं। सब भगवान स्वरूप पूर्ण है। सर्वदा ज्ञान एकरूप सर्वदा है। प्रत्येक आत्मा, हों! अभव्य का आत्मा भी ऐसा है। आहाहा! जिसका सत्व है, सत् है, उसका सत्व है, वह अपूर्ण कैसे होगा? पूर्ण सत्व से भरपूर सत् है, इसलिए एक ज्ञान है - ऐसा कहा न? **एक ज्ञान है...** सत्, द्रव्य सत्, उसमें गुण सत्, पर्याय सत्। उस पर्याय से तो जानता है और गुण सत्—ऐसा एकरूप सत् है। जानती है वह पर्याय। एकरूप को एकरूप नहीं जानता। आहाहा! एकरूप है, उसे पर्याय जानती है। वह भी एकरूप होकर जानती है। भेद बिना। वस्तु सत्, गुण सत्, (ऐसा) कौन जानता है? किसकी सत्ता में ज्ञात होता है? किसके अस्तित्व में वह ज्ञात होता है? द्रव्य-गुण के अस्तित्व में नहीं। पर्याय के अस्तित्व में, सर्वदा एक ज्ञान है—ऐसा ज्ञात होता है। आहाहा! व्यवहार को उड़ाकर, वापस निश्चय की बात की है। ऐसा नहीं कि अकेले व्यवहार को उड़ाया।

**अरे रे! खेद है कि...** अरे! ऐसा भगवान विराजता है, जिसके सामने परमात्मा स्वयं है, अग्रगम्य है, परिपूर्ण प्रभु है। अरे रे! उसके सन्मुख देखते नहीं, सुनते नहीं। दूसरी बात कही नहीं। अमुक को सुनते नहीं, इस वार्ता और कथा को। इसे सुनते नहीं, ऐसा कहा। आहाहा! यह बात अधिक सभा में ठीक नहीं लगती। वार्ता, कथा व्यवहार धमाल चलाती हो तो ऐसी लगे... आहाहा! प्रसन्न-प्रसन्न हो। आहाहा!

यहाँ **सर्वदा एक ज्ञान है,...** यह कौन जानता है? यह पर्याय। तीनों आ गये। पर्याय जानती है कि सर्वदा एकरूप ज्ञान है। विकल्प से नहीं। निर्विकल्प ज्ञान से, निर्विकल्प ज्ञान और द्रव्य सर्वदा एकरूप है, ऐसा वह जानती है। अज्ञानी ने यह बात सुनी नहीं, कभी आचरी नहीं। आहाहा! व्यवहार का अर्थात् सब अभी... सोनगढ़ के नाम से ऐसा कहते हैं, सोनगढ़ व्यवहार का लोप करता है। व्यवहार को मानते नहीं। मानते नहीं परन्तु व्यवहार नहीं? व्यवहार का फल नहीं? दोनों हैं परन्तु व्यवहार का फल तू निश्चय कहे तो वह नहीं है। व्यवहार अस्ति है। वीतराग ने कहा हुआ व्यवहार होता है, उसका फल भी संसार होता है। है, वस्तु में नहीं। आहाहा! ऐसा कठिन काम है। अभी तो बाहर से बातें चलती हैं। व्रत,

विकल्प और व्रत तथा तप और अनशन ऊनोदर, व्रती हूँ और पाँच महाव्रत, ऐसे मिलावे ऐसे मिलावे और लड़ावे, सभा प्रसन्न-प्रसन्न हो जाए। अब उसमें क्या कहते हैं यह? **सदा एक ज्ञान है,...** सदा एक ज्ञान है अर्थात् क्या? ज्ञान अर्थात् यह शास्त्र है वह? आहाहा!

शास्त्र को जानती है, वह पर्याय है। वह भी शास्त्र को जानती नहीं। वास्तव में पर्याय, पर्याय को जानती है। आहाहा! वह पर्याय, द्रव्य को जानती है। आहाहा! वह पर्याय यह जानता हूँ... यह जानता हूँ... यह जानता हूँ... यह जानता हूँ... ऐसे उसकी वर्तमान दशा में ऐसे झुकाव है, वह सब झुकाव मिथ्या है। वह झुकाव जिसकी (पर्याय) है, उसमें झुकाकर, वह ज्ञान एकरूप है, ऐसा पर्याय में ज्ञात होता है। पर्याय में ज्ञान एकरूप है, ऐसा ज्ञात होता है। पर्याय, भेद है परन्तु उसका विषय है, वह अभेद है। समझ में आया इसमें? पर्याय स्वयं भेद है। जाननेवाला स्वयं भेदरूप है परन्तु जानता है, वह अभेद है। आहाहा! और वह जाननेवाली है, वह सदा नहीं रहती। वह पलटा खाती है परन्तु जो ज्ञात होता है, वह एकरूप त्रिकाल रहता है। जाननेवाली पर्याय एकरूप नहीं रहती परन्तु जाननेवाली पर्याय का विषय जो सदा एकरूप, वह ज्ञान त्रिकाल है। निगोद से लेकर सिद्ध तक। सिद्ध भी द्रव्य नहीं, सिद्ध भी पर्याय है। आहाहा! मोक्ष भी पर्याय है। आहाहा! वह मोक्ष की पर्याय, केवलज्ञान की पर्याय भी पर्याय है, वह गुण नहीं है। आहाहा! उस पर्याय ने सदा एकरूप है, उसे जाना है। वह पर्याय सदा एकरूप है, उसे शामिल हुए बिना जानती है। उस पर्याय ने एक ज्ञायक में शामिल हुए बिना अपने अस्तित्व में रहकर, द्रव्य-गुण के अस्तित्व में प्रवेश न करके (द्रव्य-गुण को जानती है)। आहाहा! ऐसी बातें।

**सर्वदा एक ज्ञान...** ऐसा शब्द कहकर गजब किया है। आहाहा! सर्वदा एकरूप नित्य है, प्रभु! आहाहा! वह पलटती पर्याय में ज्ञात होता है परन्तु ज्ञात होता है, वह सदा एकरूप है। आहाहा! तथापि ज्ञात होता है, उसकी पर्याय का ज्ञान करे, तब प्रमाणज्ञान होता है। यह पर्याय, द्रव्य को जाने, वह निश्चय ज्ञान है। पर्याय, द्रव्य को जाने, वह निश्चय ज्ञान है परन्तु पर्याय वापस पर्याय को अपने को जाने, वह व्यवहार हुआ, प्रमाणज्ञान हुआ। ऐसा सब सूक्ष्म है। आहाहा!

परन्तु करना क्या? करना यह, भाई! एक समय में सर्वदा ज्ञानरूप प्रभु तत्त्व है, उसके सन्मुख देखना है, उसे देखकर मानना है, उसे देखकर वहाँ स्थिर होना है। उसे

जानकर मानना है और उसे जानकर वहाँ स्थिर होना है, यह करना है। आहाहा! व्यवहार को तो कथनमात्र डाला। देखा? **भवजलराशौ मग्न-जीवेन पूर्वं, किमपि वचनमात्रं निर्वृतेः** ऐसा लिखा है न? वचनमात्र कहा न? पाठ में है। **वचनमात्रं निर्वृतेः कारणं** आहाहा! कथनमात्र कारण है। वह तो कहनेमात्र कारण है। आहाहा! शब्द 'कारण' प्रयोग किया। कारण शब्द प्रयोग किया। आहाहा! कारण प्रयोग किया अर्थात् क्या? व्यवहार कारण कहा। शास्त्र में कहा न? जयसेनाचार्य की टीका में (कहा) परन्तु उसका अर्थ यह है। कथनमात्र साधक है। कथनमात्र - कहनेमात्र कारण है। आहाहा! व्यवहार को कारण तो कहा है। वह कारण कहा न? परन्तु वह कहनेमात्र कारण है। क्योंकि वह कहनेमात्र कारण है। वास्तविक नहीं। आहाहा! बहुत भरा है। कारण कहा, व्यवहार है, सुना है, आचरा है परन्तु वह कथनमात्र, कहनेमात्र कारण है। वास्तव में वह कारण है नहीं। कारण शब्द प्रयोग किया है। अब इसमें से निकालते हैं। भले कथनमात्र कहे परन्तु कारण है न? आहाहा! कारण शब्द प्रयोग किया है। वापस कहनेमात्र कारण। कारण कहा परन्तु कहनेमात्र कारण। आहाहा!

एक यथार्थ कारण है, एक कहनेमात्र कारण है। त्रिकाल स्वभाव सर्वदा एक, त्रिकाल स्वभाव सर्वदा एक, वह यथार्थ कारण है। व्यवहार है, वह कथनमात्र व्यवहार है। आहाहा! निर्मल पर्याय प्रगट हो, वह कारण सद्भूतकारण है। त्रिकाल जो ज्ञान सर्वदा एकरूप है, वह कारणपरमात्मा है। वह कारण लगा दे सबमें। त्रिकाल सद्भूत जो ज्ञानरूप है, वह कारणपरमात्मा है और जिसने जाना है, वह पर्याय है। वह पर्याय भी साधकरूप से कारण है। मोक्ष के मार्गरूप से कारण है परन्तु वह यथार्थ कारण है और विकल्पमात्र जो कथनमात्र है, वह कहनेमात्र कारण है। लो, कारण के तीन प्रकार। त्रिकाल कारणपरमात्मा सदा एकरूप, वह कारणपरमात्मा। आहाहा! जिसकी दृष्टि से कार्यपर्याय आवे ही। उस कार्यपर्याय को मोक्ष का कारण कहा जाता है। वह यथार्थ कारण है और विकल्प उत्पन्न होता है, वह कथनमात्र व्यवहारकारण है। कथनमात्र व्यवहारकारण है। यथार्थ है नहीं।

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)